

भक्ति का परिभाषिक विवेचन

डॉ. श्रीकांत मिश्र

हिन्दी विभाग

स्वामी शुकदेवानन्द कॉलेज, शाहजहाँपुर

डॉ. कमलेश मिश्र

उप-प्राचार्य

वीरांगना अवन्तीबाई महाविद्यालय, शाहजहाँपुर

भक्ति की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचारों के अनुरूप प्रस्तुत की हैं। भक्ति के विविध स्वरूपों को विद्वानों ने जब परिभाषित किया तो इसके संबंध को वेदों से जोड़ते नजर आते हैं। यह कहना गलत न होगा की भक्ति पर सम्यक विचार सर्वप्रथम नारद भक्ति सूत्र में देखने को मिलता है। बात जहाँ तक भक्ति शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग की है तो इसका प्रथम प्रयोग श्वेताश्वतर उपनिषद् में हुआ है। भक्ति को परिभाषित करते हुए नारद जी भक्ति सूत्र में इस का विस्तृत वर्णन करते हैं। नारद स्वयं रसिक भक्त हैं वह भगवान के नाम का कीर्तन करने वाले श्रेष्ठ साधक हैं। भक्ति के क्षेत्र में नारद का नाम सदा के लिए अमर है। नारद भक्ति के शिखर पुरुष हैं। इसी प्रकार शांडिल्य महर्षि ने भी भक्ति के विविध स्वरूपों की चर्चा की है वह प्रेम और श्रद्धा के समर्पण को भक्ति का मुख्य अंग मानते हैं। प्रेमदर्शन के आचार्य देवर्षि नारद और उनका भक्तिसूत्र

अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।

सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥

सनकादि मुनीश्वरों ने कहा- नारदजी! आप धन्य हैं। आप विरक्तों के शिरोमणि हैं। श्रीकृष्ण दासों के शाश्वत पथप्रदर्शक एवं भक्तियोग के भास्कर हैं। देवर्षि नारद जी की महत्ता की क्या इयत्ता, उनके भगवत् प्रेम का क्या निदर्शन, साक्षात् प्रेमस्वरूप प्रेमैकगम्य और परम प्रेमास्पद मनमोहन श्री कृष्ण जिनकी इस प्रकार निरन्तर स्तुति किया करते हैं, जिन्हें प्रणाम किया करते हैं-

अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम् ।

उत्सङ्गाद्ब्रह्मणो जातो यस्याहन्ता न विद्यते ।

अगुप्तश्रुतिचारित्रनारदं तं कामाद्वा यदि वा लोभाद् वाचं नो नान्यथा वदेत् ।

उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम् ॥ नमाम्यहम् ॥

मैं दिव्य दृष्टि सम्पन्न श्रीनारदजी की सदा स्तुति करता हूँ। जो ब्रह्माजी की गोद से प्रकट हुए हैं, जिनके मन में अहंकार नहीं है, जिनका शास्त्रज्ञान और चरित्रकिसी से छिपा नहीं है, उन देवर्षि नारद को मैं नमस्कार करता हूँ। जो कामना अथवा लोभ वक्क झूठी बात मुँह से नहीं निकालते और सभी प्राणी जिनकी उपासना करते हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। स्वयं देवर्षि नारद जी अपनी स्थितिके विषय में कहते हैं- जब मैं उन परम पावन चरण उदारश्रवा प्रभु के गुणों का गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु अविलम्ब मेरे चित्त में बुलाये हुए की भाँति तुरंत प्रकट हो जाते हैं-

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।

आहूत इव मे झीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥

श्रीनारद जी प्रेमी परिव्राजक हैं। उनका काम ही है- अपनी वीणा के मनोहर झंकार के साथ भगवान् के गुणों का प्रेमपूर्वक गान करना। उनका नित्य सर्वत्र भ्रमण प्रेमास की अविकल धारा को प्रवाहित करने के लिये हुआ करता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे अवतरित भी होते हैं। वे प्रेम कीर्तन के आचार्य और भागवत धर्म के प्रधान बारह आचार्यों में हैं। उन्होंने घर-घर एवं जन-जन में प्रेमाभक्ति की स्थापना करने की प्रतिज्ञा की है। निरन्तर वे इस भक्ति के प्रचार में ही लगे रहते हैं। देवर्षि नारद जी कृपामूर्ति हैं, जीवों पर कृपा करने के लिये ये निरन्तर त्रिलोकी में घूमते रहते हैं। इनका एक ही व्रत है कि जो भी मिल जाय, उसे चाहे जैसे हो भगवान् के श्रीचरणों तक पहुँचा दिया जाय। ये सचमुच सबके सच्चे हितैषी हैं। इन्हें भगवान् का मन कहा गया है। प्रह्लाद, ध्रुव, अम्ब-रीष आदि महान् भक्तों को इन्होंने ही भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया और श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकी, रामायण-जैसे दो अनूठे ग्रन्थ भी संसार को इन्हीं की कृपा से प्राप्त हुए। शुकदेव-जैसे महान् ज्ञानी को भी इन्होंने ही उपदेश दिया। पूर्वजन्म में इन्हें भगवान् की जिस मोहिनी छवि का दर्शन प्राप्त हुआ था, उसी को प्राप्त करने की छटपटाहट में देवर्षि नारद ने उस जन्मको भगवत् स्मृति से कृतार्थ कर पुनः इस जन्म को भगवान् के नित्य पार्षद के रूप में प्राप्त किया। देवर्षि नारद भगवान् के विशेष कृपापात्र और लीला सहचर हैं। जब-जब भगवान् का अवतार होता है, ये उनकी प्रेमलीला के लिये भूमि तैयार करते हैं। लीलोपयोगी उपकरणों का संग्रह और अन्य प्रकार की सहायता करते हैं। इनका मङ्गलमय जीवन जगत् के मङ्गल के लिये ही है। श्रीराम और श्रीकृष्ण की लीलाओं में तो ये विशेष रूप से सहयोग देते रहे।

एक समय देवर्षि नारदजी ने भगवान् से पूछा- देवेश्वर ! आप कहाँ निवास करते हैं? इसपर भगवान् ने कहा- नारद ! न तो मैं वैकुण्ठ में वास करता हूँ और न योगियों के हृदय में, मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करते हैं, वहीं मैं भी रहता हूँ-

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै।

मद्भक्ता यः गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः ॥

बस, फिर क्या था, देवर्षि नारदजी ने भगवद् गुणगान प्रारम्भ कर दिया। देवर्षि नारद जी ने अनुभव किया कि भगवान् भक्त के प्रेम के वशीभूत हैं तथा प्रेम का, अनुराग का, अनुरक्ति का मार्ग सहज और सुलभ भी है। इसलिये अनन्य प्रेम से उन्हें रिझाना चाहिये। इसी बात को बताने के लिये इन्होंने चौरासी सूत्रों की उद्भावना की। ये ही चौरासी सूत्र भक्ति सूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्रेम

की महाभावदशा का बहुत ही अद्भुत वर्णन हुआ है। इस भक्ति सूत्र के सूत्र छोटे-छोटे हैं, संस्कृत बहुत ही सरल है, किंतु भाव बड़ा ही गम्भीर है। ये सभी सूत्र याद करने योग्य हैं। जैसे प्रेम के स्वरूप के विषय में बताया गया है- 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्॥' प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। यह प्रेम गुण रहित है, कामना रहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है- 'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्॥' साथ ही भक्ति क्या है इसे बताते हुए कहा गया है- 'तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।' अर्थात् अपने सब कर्मों को भगवान् के अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने में परम व्याकुल होना ही भक्ति है। नारद जी ने प्रेमा भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी बढ़कर बताते हुए कहा है- 'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा॥' भक्ति को प्राप्त करने के मुख्य साधनों में देवर्षि नारद जी ने भगवत् प्रेमी महापुरुषों की अथवा लेशमात्र भी भगवत् कृपा को ही माना है- 'मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालशाद्वा॥' यह भी बताया गया है कि महापुरुषों का सङ्ग अथवा सत्सङ्ग बड़ा ही दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है तथा यह भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होता है- 'महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघकृत्। लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव॥' भगवान् और उनके भक्तों में भेदका अभाव है- 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्॥'

देवर्षि नारदजी बताते हैं कि भगवत् प्रेमी भक्त स्वयं तो तरता ही है, लोकों को भी तार देता है- 'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति॥' इतना ही नहीं, भगवान् के प्रेमी भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सत्-शास्त्र कर देते हैं- 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि॥' ऐसे भक्तों को पाकर पितर आनन्दित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथा हो जाती है- 'मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति॥' निष्कर्ष रूप में देवर्षि नारद जी कहते हैं- 'सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः॥' अतः सब समय, सर्वभाव से निश्चिन्तित होकर केवल भगवान् का ही भजन करना चाहिये। यहाँ सार रूप में भक्तिसूत्र प्रस्तुत हैं-

नारदभक्तिसूत्रः- अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः॥1॥

सा त्वस्मिन् 'परमप्रेमरूपा॥2॥

अमृतस्वरूपा च॥3॥

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति॥4॥

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति॥5॥

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति॥6॥

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्॥7॥

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः॥8॥

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च॥9॥

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता॥10॥

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ॥ 11॥

भवतु निश्चयदार्थ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ॥ 12॥

अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥ 13॥

लोकोऽपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापार-स्वाशरीरधारणावधि ॥ 14॥

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥ 15॥

अब हम भक्ति की व्याख्या करेंगे। वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है। और अमृत स्वरूपा (भी) है। जिसको (परम प्रेमरूपा और अमृतरूपा भक्तिको) पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है (और) तृप्त हो जाता है। जिसके (प्रेमस्वरूपा भक्ति के) प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे (विषय भोगों की प्राप्ति में) उत्साह होता है। जिसको (परम प्रेमरूपा भक्ति को) जान (प्राप्त)-कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध (शान्त) हो जाता है (और) आत्माराम बन जाता है। वह (प्रेमाभक्ति) कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि वह निरोधस्वरूपा है। लौकिक और वैदिक (समस्त) कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं। उस प्रियतम भगवान् में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं। (अपने प्रियतम भगवान् को छोड़कर) दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है। लौकिक और वैदिक कर्मों में भगवान् के अनुकूल कर्म करना ही उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता है। (विधि निषेध से अतीत अलौकिक प्रेम-प्राप्ति करने का मन में) दृढ़ निश्चय हो जाने के बाद भी शास्त्र की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् भगवदनुकूल शास्त्रोक्त कर्म करने चाहिये। नहीं तो गिर जाने की सम्भावना है। लौकिक कर्मों को भी तबतक (बाह्यज्ञान रहने तक) विधि पूर्वक करना चाहिये, पर भोजनादि कार्य जब तक शरीर रहेगा तब तक होते रहेंगे। अब नाना मतों के अनुसार उस भक्ति के लक्षण बताये जाते हैं।

जो इस नारदोक्त शिवानुशासन में विश्वास और श्रद्धा करते हैं वे प्रियतम को पाते हैं, महर्षि शाण्डिल्य और उनका भगवत् प्रेम कृपामूर्ति महर्षि शाण्डिल्य परम भागवत हैं। भगवान् के अनन्य प्रेमी हैं। वे भगवान् के सौन्दर्य, माधुर्य एवं औदार्य आदि दिव्य स्वरूपों का ध्यान करते रहते हैं। भगवान् की मङ्गलमयी कथाओं का प्रेमपूर्वक श्रवण तथा प्रेमाभक्ति का दान-ये ही दो उनके मुख्य कार्य रहे हैं। त्याग, वैराग्य, तपस्या तथा स्वाध्याय का आश्रयण और भगवत् प्रेम में निमग्न रहना-यही उनकी मुख्य चर्या रही है। पद्मपुराण ने बताया है कि महर्षि शाण्डिल्य भगवान् की लीला स्थली परम पावन चिच्छूट धाम में रहते हुए श्रीमद्भागवत की कथाओं का पाठ करते हुए ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते हैं-

इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ।

पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥

पुराणों में आया है कि कश्यपवंशी महामुनि देवलके पुत्र ही शाण्डिल्य नाम से प्रसिद्ध हुए। धर्मशास्त्रकार शङ्ख और लिखित इन्हीं के पुत्र कहे गये हैं। ये रघुवंशीय नरेश दिलीप के पुरोहित थे। कहीं-कहीं नन्द-गोप के पुरोहित के रूप में भी इनका वर्णन आता है। इन्होंने प्रभास क्षेत्र में

शिवलिङ्ग स्थापित कर दिव्य सौ वर्षों तक घोर तपस्या और प्रेमपूर्ण आराधना की थी, फलस्वरूप भगवान् शिव प्रसन्न हुए और इनके सामने प्रकट होकर इन्हें तत्त्वज्ञान, भगवद्भक्ति और अष्ट सिद्धियों का वरदान दिया।

महर्षि शाण्डिल्य ने मथुराधिपति राजा वज्रबाहु को सम्पूर्ण गर्गसंहिता सुनायी। इसका फल यह हुआ कि राजा को पार्षदों सहित भगवान् राधामाधव के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उस समय महर्षि शाण्डिल्य ने भगवान् की बहुत ही सुन्दर स्तुति की, जो इस प्रकार है-

वैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं

नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।

गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं

गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्॥

भाव यह है कि प्रभो! आप वैकुण्ठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परम श्रेष्ठ हैं। गो-पालन की लीला में आपकी विशेष अभिरुचि रहती है-ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकाधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

एक बारकी बात है- ऋषियों ने महर्षि शाण्डिल्य से पूछा- ' भगवन्! सब जगह और सब समय में काम देने वाला ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा मनुष्य सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है? '

महर्षि शाण्डिल्य ने उत्तर दिया -

क्षेममात्यन्तिकं विप्रा हरेर्भजनमेव हि।

देशकालानपेक्षात्र साधनाभावमप्युत॥

अर्थात् 'हे विप्रो! मनुष्य जीवन में सबसे बढ़कर कल्याणकारक भगवद्भजन है। किसी देश या काल की इसमें अपेक्षा नहीं है और न इसके लिये साधन जुटाने पड़ते हैं। '

भक्तिः श्रीकृष्णदेवस्य सर्वार्थानामनुत्तमा।

एषा वै चेतसः शुद्धिर्यतः शान्तिर्यतोऽभयम्॥

अर्थात् 'भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष- चारों पुरुषार्थों से भी बढ़कर है। इससे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अन्तःकरण के शुद्ध होने पर जीव को शान्ति मिलती है, वह निर्भय हो जाता है। '

महर्षि शाण्डिल्य भक्तिशास्त्र के महान् आचार्य हैं। जैसे भगवान् वेदव्यास ने समस्त श्रुतियों का समन्वय करने के लिये ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया, वैसे ही श्रुतियों, श्रीमद्भागवत तथा गीता का तात्पर्यपरक निर्णय करने के लिये इन्होंने एक विलक्षण ग्रन्थ का प्रणयन किया, जो 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' या 'भक्तिमीमांसा' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्वरूप में जितना ही लघु है, माहात्म्य में उतना

ही बृहद् है। इसमें छोटे-छोटे एक सौ सूत्र हैं। इन सूत्रों में उन्होंने प्रेम, प्रेमी तथा प्रेमास्पद का जो सुन्दर वर्णन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनके नाम से एक उपनिषद् भी प्राप्त है, जिसमें इन्हें योगज्ञान के विशिष्ट जिज्ञासु एवं आचार्य के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। इस उपनिषद् में प्रेमयोग तत्त्व एवं अध्यात्म-साधना की प्रक्रिया का निरूपण हुआ है।

आचार्य का अभिमत है कि जीवों का ब्रह्मभावापन्न होना ही मुक्ति है। जीव ब्रह्म से अभिन्न है। उसका आवागमन स्वाभाविक नहीं है, किंतु जपाकुसुम के सांनिध्य से स्फटिकमणि की लालिमा के समान, अन्तःकरणकी उपाधि से ही होता है, किंतु केवल औपाधिक होने के कारण ही वह ज्ञान से नहीं मिटाया जा सकता, उसकी निवृत्ति तो उपाधि और उपाधेय-इन दोनों में से किसी एक की निवृत्ति या सम्बन्ध छूट जाने से ही हो सकती है। चाहे जितना ऊँचा ज्ञान हो, किंतु जैसे स्फटिकमणि और जपाकुसुम का सांनिध्य रहते लालिमा की निवृत्ति नहीं हो सकती, वैसे ही जब तक अन्तःकरण है, तब तक न तो उपाधि और उपाधेय का सम्बन्ध छुड़ाया जा सकता है तथा न आवागमन से ही जीव को बचाया जा सकता है। अतः उपाधि के नाश से ही भ्रम की निवृत्ति हो सकती है। उपाधिनाश के लिये भगवद्भक्ति से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। इस भक्ति से त्रिगुणात्मक अन्तःकरण का लय होकर ब्रह्मानन्द का प्रकाश हो जाता है, इससे आत्मज्ञान की व्यर्थता भी नहीं होती, क्योंकि अश्रद्धारूपी मलको दूर करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार महर्षि शाण्डिल्य ने भगवद्भक्ति की उपयोगिता और ज्ञान की अपेक्षा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है।

भक्ति क्या है, इसे बताते हुए वे अपने भक्ति सूत्र में कहते हैं- 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' भगवान् में परम अनुराग ही भक्ति है अर्थात् भगवान् के साथ अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। इस अनुराग से ही जीव भगवन्मय हो जाता है, उसका अन्तःकरण अन्तःकरण के रूपमें पृथक् न रहकर भगवान् में समा जाता है, यही मुक्ति है।

भगवान् के सर्वोपरि गुण को बताते हुए महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं- 'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्'। अर्थात् भगवान् का मुख्य गुण है- कारुण्य या दयालुता। परमात्मा परम दयालु हैं, कृपालु हैं, कृपासागर हैं- इस बात को सदा ध्यानमें रखते हुए प्रेम पूर्वक उनकी आराधना करनी चाहिये। इससे भगवद्विश्वास में वृद्धि होगी और भगवान् में अनन्य प्रेम होने में परम सहायता प्राप्त होगी। करुणावरुण तालय प्रभु करुणा-कृपा की वर्षा कर जीवों का उद्धार कर देते हैं। महर्षि शाण्डिल्य विरचित यह भक्तिसूत्र बड़े ही महत्त्व का है। इसके छोटे-छोटे सूत्रों में भगवत् प्रेम का बड़ा ही निगूढ़ भाव भरा हुआ है।

महर्षि शाण्डिल्य भगवान् की लीला स्थलियों में भ्रमण करते हुए, भगवान् के दिव्य चरित्र का अनुस्मरण करते हुए विभोर रहते हैं और भगवत् प्रेमियों को भगवत्-लीलाधाम का रहस्य भी बताते हैं। एक बार ऐसे ही भ्रमण करते हुए महर्षि ब्रज भूमि में पहुँच गये और महाराज परीक्षित तथा राजा वज्रनाभ की प्रार्थना पर उन्होंने उन्हें भगवान् की अन्तरंग प्रेम लीला स्थली ब्रजभूमि का रहस्य बताते हुए कहा-

प्रिय परीक्षित और वज्रनाभ ! मैं तुम लोगों को ब्रजभूमि का रहस्य बतलाता हूँ। तुम दत्तचित्त होकर सुनो। 'ब्रज' शब्द का अर्थ है-व्याप्ति। इस वृद्धवचन के अनुसार व्यापक होने के कारण ही इस भूमिका नाम 'ब्रज' पड़ा है। सत्त्व, रज तथा तम-इन तीन गुणों से अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक

है। इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं। वह सदानन्दस्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवन्मुक्त पुरुष उसी में स्थित रहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाम में नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण का निवास है उनका एक-एक अङ्ग सच्चिदानन्द स्वरूप है। वे आत्माराम और आप्तकाम हैं।

प्रेम रस में डूबे हुए रसिक जन ही उनका अनुभव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की आत्मा हैं- राधिका, उसमें रमण करने के कारण ही रहस्य-रस के मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें 'आत्माराम' कहते हैं। 'काम' शब्द का अर्थ है कामना - अभिलाषा, व्रज में भगवान् श्रीकृष्ण के वांछित पदार्थ हैं- गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला-विहार आदिय वे सब-के-सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं। इसी से श्रीकृष्ण को 'आप्तकाम' कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण की यह रहस्य लीला प्रकृति से परे है। वे जिस समय प्रकृति के साथ खेलने लगते हैं, उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीला का अनुभव करते हैं प्रकृति के साथ होने वाली लीला में ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण के द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय की प्रतीति होती है।

इस प्रकार यह निश्चय होता है कि भगवान् की लीला दो प्रकार की है- एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी। वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है- उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवों के सामने जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। वास्तवी लीला के बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती परन्तु व्यावहारिकी लीला का वास्तविक लीला के राज्य में कभी प्रवेश नहीं हो सकता।

छान्दोग्य श्रुति में आपके द्वारा उपदिष्ट विद्या को 'शाण्डिल्यविद्या' के नाम से अभिहित किया गया है। उसमें आपने बताया है कि सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्म है, इसका कारण यह है कि परमात्मा 'तज्जलानिति' है अर्थात् यह संसार उसी परमात्मा से उत्पन्न होता है, उसी में लीन होता है और उसी से प्रतिपालित होता है। पुरुष भावनामय है। उसकी जैसी भावना होगी, वैसी ही उसे गति मिलेगी। परमात्मा सत्यसंकल्प, सर्वकर्ता तथा सर्वगत हैं, वे दयालु हम लोगों के हृदय में ही विराजमान हैं। यदि हमलोग उनका आश्रय लें तो उन्हें अवश्य प्राप्त कर सकते हैं, इसमें संदेह नहीं-

‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।’

‘एतद् ब्रह्मतमितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति।’

भगवत् प्रेमी महर्षि शाण्डिल्य जी ने भगवान् की प्रेमाभक्ति का उल्लेख कर भक्तों पर महान् अनुग्रह किया है। हिंदी के प्रसिद्ध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी भक्ति के संदर्भ को अपने निबंध श्रद्धा-भक्ति के माध्यम से सरल शब्दों में व्याख्यायित किया है। आचार्य शुक्ल निबंध संग्रह चिन्तामणि में भक्ति पर विचार करते हुए कहते हैं कि- “श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनन्द का अनुभव होने लगे जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति-रस का संचार समझना चाहिए। जब श्रद्धेय का उठना, बैठना, चलना, फिरना, हँसना, बोलना, क्रोध करना आदि भी हमें अच्छा लगने लगे, तब हम समझ लें कि हम उसके भक्त हो गए। भक्ति की अवस्था प्राप्त होने पर हम अपने जीवन-क्रम का थोड़ा या अल्प भाग उसे अर्पित करने को प्रस्तुत होते हैं और उसके जीवन-क्रम



पर भी अपना कुछ प्रभाव रखना चाहते हैं। कभी हम अर्पण करते हैं और कभी श्रद्धा करते हैं। सारांश यह कि भक्ति-द्वारा हम भक्ति भाजन से विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उसकी सत्ता में विशेष रूप से योग देना चाहते हैं। किसी के प्रति श्रद्धा धारण करके हम बहुत करेंगे समय-समय पर उसकी प्रशंसा करेंगे, उसकी निन्दा करने वालों से झगड़ा करेंगे या कभी कुछ उपहार लेकर उपस्थित होंगे, पर जिसके प्रति हमारी अनन्य भक्ति हो जायेगी वह अपने जीवन के बहुत से अवसरों पर हमें अपने साथ देख सकता है। वह अपने बहुत से उद्योगों में हमारा योगदान पा सकता है। भक्त वे ही कहला सकते हैं जो अपने जीवन का बहुत कुछ अंश स्वार्थ (परिवार या शारीरिक सुख आदि) से विभक्त करके किसी के आश्रय से किसी ओर लगा सकते हैं। इसी का नाम है आत्मनिवेदन।''

:: संदर्भ ::

1. श्रीमद्भगवद्गीता, माहात्म्य, 2/54
2. स्कन्द पुराण, माहेन्द्र कौमारिकाखण्ड
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 1/6/34
4. पद्मपुराण उद्ग 92/22
5. नारद, भक्तिसूत्र 51
6. वही, 54।
7. वही, 19
8. वही, 25।
9. वही, 38।
10. वही, 39-40।
11. वही, 41।
12. वही, 50।
13. वही, 69।
14. वही, 71।
15. वही, 79।
16. श्रीमद्भगवद्गीता माद्र 5/89
17. गर्गसंहिता, 4/8
18. शाण्डिल्यसंहिता, 1/9
19. वही, 1/19
20. शाण्डिल्यसूत्र 49
21. छान्दोग्य उपनिषद्, 3/14/1, 4
22. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, चिंतामणि भाग 1, पृ. 21